24

अन्तरङ्ग साधन

प्रस्तावना

मोक्ष ही प्राणियों का लक्ष्य है। और वह मोक्ष जीव और ब्रह्म की एकता के विज्ञान से होता है। अद्वैत ब्रह्म ही परिच्छिन्नता के कारण जीव रूप में प्रतिभासित होता है। क्योंकि ब्रह्म का नित्य-शुद्ध-बद्ध-मुक्त स्वरूप है। इस प्रकार के ब्रह्म का ज्ञान मलिन अन्त:करण से होना सम्भव नहीं है। ब्रह्म ही आत्मा है। अत: ब्रह्मज्ञान ही आत्मस्वरूपज्ञान है। आत्मस्वरूप के ज्ञान के लिए मन एकाग्र, निर्मल, शान्त और शुद्ध होना चाहिए। मन के निर्मलत्वादि के लिए अद्वैतवेदान्त में बहुत से साधन उपदिष्ट किए हैं। उनमें से कुछ अंतरङ्ग (आन्तरिक) साधन हैं, कुछ बहिरङ्ग साधन है। बहिरङ्ग साधन कर्मयोग, ध्यानयोगादि साधन और उपासना हैं। वे उपासनादि बहिरङ्ग साधन अद्वैततत्त्वज्ञान के लिए परम्परा से कारण हैं। वे सब साक्षात् साधन नहीं हैं। और जो अद्वैततत्त्व के साक्षात्कार के लिए साक्षात् साधन हैं वे सहकारी साधन कहलाते हैं। सहकारि साधन साधनचतुष्टय हैं। विवेक, वैराग्य, शमादिष्टक, और मुमुक्षुत्व ये चार साधन साधनचतुष्टय नाम से प्रथित हैं। इन साधनों से युक्त साधक ही वेदान्तवाक्यों का श्रवणादि करके उस फल को प्राप्त करता है। यहाँ पाठ में यथाशास्त्र साधनचतुष्टय का वर्णन करते हैं।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- अद्वैतवेदान्त के मत में मोक्ष के सहकारी साधन क्या हैं यह जान पाने में;
- ब्रह्मविद्या में अधिकारी कौन है यह जान पाने में;
- साधनचतुष्टय क्या है यह जान पाने में;

- श्रवण-मनन और निदिध्यासन ब्रह्मज्ञान में कैसे उपकार करते हैं यह जान पाने में;
- साधनचतुष्टयसम्पन्न नचिकेता की कथा को जान पाने में;
- तात्पर्य ग्राहक लिङ्गों को जान पाने में;
- तात्पर्य क्या है यह जान पाने में।

24.1 मोक्षस्य सहकारिसाधनम्

मोक्ष के कर्मयोगादि परम्परा साधनों से चित्तशुद्धि होती है। जिसकी चित्तशुद्धि होती है उसी को साधन चतुष्टयाख्य मोक्ष के सहकारिसाधन सिद्ध होते हैं। इसलिए ब्रह्मविद्या में अधिकार प्राप्त करने की इच्छा वाले जन को मोक्ष के परम्परा साधन, कर्मयोगादि का अनुष्ठान किया जाना चाहिए। जब क्रमशः अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है तब साधक के द्वारा साधनचतुष्टय का अभ्यास किया जाना चाहिए। मोक्ष के सहकारिसाधन इससे मोक्ष के प्रति साक्षात् साधन ब्रह्मज्ञान की उत्पत्ति में जो सहकारिसाधन है वही बोद्धव्य है। वेदान्त शास्त्र में सर्वत्र साधनचतुष्टय इस साधनों से मोक्ष के सहकारिसाधन प्रसिद्ध हैं। साधन चतुष्टय से चार साधन प्रसिद्ध हैं। नित्यनित्यवस्तुविवेक, इहामुत्रफलभोगविराग, शमादिष्टक, सम्पत्तिः और मुमुक्षुत्व ये चार साधन वेदान्त शास्त्र में साधनचतुष्टय कहे जाते हैं।

साधनचतुष्टय क्या है यह वेदान्तसार ग्रन्थ में सदानन्दयोगीन्द्र ने कहा है-

''साधनानि नित्यनित्यवस्तुविवेक-इहामुत्रार्थफलभोगविराग शमादिषट्क सम्पत्ति-मुमुक्षुत्वानि'' इति।

अर्थात् - 1) नित्यनित्यवस्तुविवेक, 2) इहामुत्रफलभोगविराग, 3) शमादिषटकसम्पत्ति और 4) मुमुक्षुत्व चार साधन हैं। अब इनका क्रमशः विवरण नीचे करते हैं-

24.2 नित्यानित्यवस्तुविवेकः-

चारों साधनों में प्रथम साधन नित्यानित्यवस्तुविवेक है। नित्य और अनित्य वस्तु नित्यानितयवस्तु है और उन नित्यानित्य वस्तुओं का विवेक नित्यानित्यवस्तुविवेक कहलाता है। जगत् में नित्य वस्तु और अनित्य वस्तु ये दो प्रकार की वस्तुएँ होती है। उनका विवेक विवेचन है कि नित्य वस्तु क्या है और अनित्य वस्तु क्या है यह विचारपूर्वक ज्ञान करना ही नित्यानित्यवस्तुविवेक है।

वेदान्तसार के लेखक के मत में ''नित्यानित्यवस्तुविवेकस्तावत् ब्रह्मैव नित्यं वस्तु ततोऽन्यदखिलमनित्यमिति विवेचनम्।' ब्रह्म ही नित्य वस्तु है उसके अतिरिक्त सब आकाशादिप्रपंचादि अनित्य वस्तु हैं ऐसा विचारपूर्वक ज्ञान ही नित्यानित्यवस्तुविवेक है। नित्य वस्तु क्या होती है? जो तीनों कालों में रहे वह नित्य वस्तु है। जो अतीतकाल

में भी थी, वर्तमानकाल में भी है, भविष्यकाल में भी होगी वह नित्य वस्तु है। ऐसा एक ब्रह्म ही है। ब्रह्म नित्य वस्तु है इसका यहाँ प्रमाण- ''नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मम्'' (मुण्डाकोपनिषदि 1/1/6), ''आकाशवत् सर्वगतश्च नित्यः', अजो नित्यः शाश्वतः'' (कठोपनिषदि 1/2/18), ''सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म'' (तैत्तिरीये 2/1) ये सब श्रुतियाँ हैं। ब्रह्म से भिन्न अन्य सब अनित्य है। वे सब पहले नहीं थीं, अब हैं और भविष्यकाल में नहीं होंगी। अतः वे सब कालत्रय नहीं होगी। अतः वे अनित्य वस्तुएँ हैं। ब्रह्म से भिन्न अन्य सबके अनित्यत्व के विषय में ''नेह नानास्ति किञ्चन'' (4/4/19), ''अथ यदल्पं तन्मर्त्यम्'' (छान्दोग्ये 7/24/1) इत्यादि श्रुतियाँ प्रमाणभूत हैं।

नित्य वस्तुएँ अनित्य वस्तुएँ ऐसे इनका पृथक्करण ही नित्यानित्यवस्तुविवेक है। विवेकचूड़ामणि में भी कहा है-

''ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्येत्येवंरूपो विनिश्चयः।
सोऽयं नित्यानित्यवस्तुविवेकः समुदाहृतः॥''

''ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या''- ऐसा इस प्रकार जो विनिश्चय, निर्धारण है वह यह नित्यानित्यवस्तुविवेक उदाहृत। कथित या उक्त है ऐसा अर्थ है। यदि शंका की जाए कि नित्यानित्यवस्तुविवेक से क्या सिद्ध होता है तो हमारा प्रकृत जो नित्य-शुद्ध-बद्ध-मुक्तस्वरूप है वही नित्य है यह सिद्ध होता है। उससे स्वरूपभूत नित्य वस्तुओं में ही प्रीति उत्पन्न होती है। यह नित्यानित्यवस्तुविचार वस्तुतः वेदान्तवाक्यों के श्रवण से सिद्ध होता है। न केवल नित्य वस्तुओं में प्रति अपितु वेदान्तवाक्य विचार से अनित्य वस्तुओं में द्वेष भी उत्पन्न होता है। जब नित्यानित्यवस्तुविवेक सिद्ध होता है तभी द्वितीय साधन इहामुत्रफलभोगविराग में प्रयास करना चाहिए।

24.3 इहामुत्रफलभोगविरागः-

नित्यानित्यवस्तुविवेकरूप प्रथम साधन के फलरूप साधन इहामुत्रफलभोगविराग है। इह अर्थात् इस लोक में अमुत्र अर्थात् स्वर्गलोक में कर्मजन्य जो फल प्राप्त होता है उसका भोग इहामुत्रफलभोग कहलाता है, उस फलभोग से विराग, विरक्ति, आसक्ति का अभाव ही इहामुत्रफलभोगविराग कहलाता है। इहामुत्रफलभोगविराग के विषय में वेदान्तसार में कहा है-

''ऐहिकानां स्रक्चन्दनवनितादिविषयभोगानाम् कर्मजन्यतया अनित्यत्ववत् आमुष्मिकाणां अपि अमृतादिविषयभोगानाम् अनितयतया तेभ्यो नितरां विरतिः इहामुत्रफलभोगविरागः।'' इहलोक में होने वाले ऐहिक हैं। स्रक् चन्दन, वनिता, गृह, क्षेत्रादि विषय इस लोक में होते हैं अर्थात् इस लोक में ही होते हैं अतः ये विषय ऐहिक हैं। इन विषयों के भोग से ही जीव स्वयं को सुखी हैं ऐसा मानते हैं। परन्तु ऐहिक वस्तुओं से जो सुख जीव प्राप्त करते हैं वह अनित्य है। क्योंकि विषय अनित्य हैं। अतः वहाँ से जनित सुख भी अनित्य है। इसी प्रकार आमुष्मिक स्वर्गसुख अमृतादि विषय भोगों का भी अनित्यत्व

टिप्पणी

ही है। वहाँ प्रमाण हैं- ''तद्यथेह कर्मजितो लोकः क्षीयते एवम् एव अमुत्र पुण्यजितो लोकः क्षीयते'' (छा. 1/8/16) इत्यादि श्रुति हैं। अर्थात् कर्म से जीता गया पृथिवीलोक भोग से क्षीण हो जाता है वैसे ही पुण्य से जीता गया स्वर्गलोक भी भोग से क्षीण हो जाता है। ''क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति'' (गीता 9.21) यह गीतावचन भी प्रमाण है। अतः लौकिक तथा स्वर्गीयसुख दोनों ही अनित्य हैं। क्योंकि ये अनित्य हैं अतः इनसे निरन्तर विरति, अत्यन्त विमुखता ही इहामुत्रफलभोगविराग है। विवेकचूड़ामणि में भी कहा है-

''तद्वैराग्यं जुगुप्सा या दर्शनश्रवणादिभिः।
देहादिब्रह्मपर्यन्ते ह्यनित्ये भोगवस्तुनि॥'' (21)

स्वदेह से आरम्भ करके ब्रह्मलोक तक भोग्यवस्तुओं में दर्शन या श्रवण से जो जुगुप्सा या घृणाबोध है वही वैराग्य है। अर्थात् मनुष्य शरीर अनित्य है यह सब जानते हैं। यद्यपि वह निवास दीर्घकालिक होता है तथापि वहाँ नित्य निवास नहीं होता है। ब्रह्मलोक में प्राप्त सुख का अवसान होता ही है। कुछ वस्तुएँ अनित्य है यह देखते ही ज्ञान हो जाता है, कुछ वस्तुएँ अनित्य है ऐसा आप्तजन के मुख से सुनकर ज्ञान होता है। दोनों प्रकार से भोग्यवस्तुओं के अनित्यत्व को जानकर उसमें जो जुगुप्सा, घृणाभाव होता है वही वैराग्य है ऐसा कहते हैं।

इस प्रकार अनित्य वस्तुओं जब वैराग्य उत्पन्न होता है नित्य वस्तु को जानने के लिए मन आकुलित होता है। तभी साधक साधनचतुष्टय में तृतीय साधन को साधना प्रारम्भ करता है।

24.4 शमादिषट्कसम्पत्ति

जब अधिकारी द्वितीय साधनसम्पन्न होता है तभी तृतीय साधन का मार्ग उन्मुक्त होता है। तृतीय साधन शमादिषट्सम्पत्ति है। शमादि छः साधनों की सम्पत्ति, सम्प्राप्ति ही शमादिषट्सम्पत्ति है। शमादि शम, दम, उपरति, तितिक्षा, समाधान और श्रद्धा हैं। इन सब साधनों की प्राप्ति ही शमादिषट्सम्पत्ति है। शमादि क्या हैं ऐसा प्रश्न है तो शमादि छः सम्पत्तियों का वर्णन एक-एक करके नीचे किया जाता है-

24.4.1 शमः-

''शमस्तावत् श्रवणादिव्यतिरिक्तविषयेभ्यः मनसः निग्रहः'' ऐसा वेदान्तसार में उक्त है। वस्तुतः मन का निग्रह ही शम है। वेदान्त तत्व का श्रवण-मनन-निदिध्यासन से ही तत्वज्ञान होता है। जिस वृत्ति विशेष से आत्मविषयकश्रवणादिभिन्न विषयों से बल से मन का निग्रह होता है वह शम है। जीव का चित्त अतिशय चपल है। एक विषय में दीर्घकाल नहीं ठहरता। जैसे बुभुक्षु की भोजन के प्रति अभिरूचि होती है वैसे ही वैराग्यवान् पुरूष

की तत्त्वज्ञान में अभिरूचि होते हुए भी पूर्व संस्कारवश विक्षिप्त हो जाती है। जिस दशा में जिस वृत्ति विशेष से पार्थिव सुख अनित्य, परिणाम में दु:खजनक होते हैं ऐसे बलपूर्वक विषयों से प्रतिक्षण ही शम है। सुबोधिनी में कहा है-

''यथा तीव्रायां बुभुक्षायां भोजनाद् अन्यव्यापारो मनसे न रोचते, भोजने च विलम्बं न सहते, तथा स्त्रक- चन्दनादिविषयेषु अन्त्यन्तं अरूचि:, तत्त्वज्ञानसाधनेषु श्रवणमननादिषु अत्यन्तं अभिरूचिर्जायते यदा, तदा पूर्ववासनाबलात् श्रवणादिसाधनेभ्य: उड्डीय स्त्रकचन्दनआदिविषयेषु गम्यमानं मन:, येनान्त:करणवृत्ति विशेषेण निगृह्यते, स वृत्तिविशेष: शम इत्यर्थ:।''

विवेक चूड़ामणि में भी कहा है-

''विरज्य विषयव्रातद्दोषदृष्ट्या मुहुर्मुह:।
स्वलक्ष्ये नियतावस्था मनस: शम उच्यते॥' (22)

मुहुर्मुह अर्थात् प्रतिक्षण, दोषदृष्ट्या-दोषदर्शन से, विषयव्रातात् अर्थात् विषय समूह से, विरज्य अर्थात् वैराग्य नियतावस्था अर्थात् निश्चल रूप से अवस्थान शम कहा है, कथित है ऐसा इस श्लोक का अर्थ है।

24.4.2 दम:-

''दमो बाह्येन्द्रियाणां तद्व्यतिरिक्यविषयेभ्यो निवर्तनम्'' ऐसा वेदान्तसार में उक्त है। बाह्येन्द्रियाँ चक्षु-कर्ण-नासिका-जिह्वा व त्वचा नाम वाली पाँच हैं। इन इन्द्रियों में चक्षु की रूप के प्रति, कर्ण की शब्द के प्रति, नासिका की गन्ध के प्रति, जिह्वा की रस के प्रति और त्वचा की स्पर्श के प्रति स्वभाव से ही प्रवृत्ति दिखाई देती है। आत्मविषयक-श्रवणमननादि में जब मन की प्रवृत्ति होती है तब बाह्येन्द्रियाँ स्वविषय की ओर जाती हैं तो अन्त:करण की जिस वृत्ति विशेष से बाह्येन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों की ओर नहीं जाती वह दम है। अत: दम बाह्येन्द्रियों का निग्रह है। इसलिए वेदान्तसार की टीका सुबोधिनी में कहा है- ''ज्ञानसाधनश्रवणादिभ्यो विलक्षणेषु शब्दादिविषयेषु प्रवर्त्तमानानि श्रेत्रदीनि बाह्येन्द्रियाणि येन वृत्तिविशेषेण निवर्तन्ते स दम इत्यर्थ:।'' पहले अन्त: इन्द्रियों का निग्रह करना चाहिए। उसके बाद बाह्येन्द्रियों का निग्रह करना चाहिए। इसलिए पहले शम का निर्देश है उसके बाद दम का निर्देश है। यदि मन वशीभूत होता है तभी चक्षु आदि का निग्रह सम्भव है। मन के संकल्पवश ही चक्षु आदि रूपादि में भागती हैं। यदि कोई पुरूष किसी विषय में मन का नियोग करता है तो उसके सामने सुरूप भी हो तो नहीं दिखता, सुगीत हो तो भी नहीं सुनता। अत: मन का निग्रह हो जाता है तो बाह्येन्द्रियों का स्वत: निग्रह हो जाता है। परन्तु संस्कारवश मन विक्षिप्त होता है और इन्द्रियाँ अपने विषयों की ओर भागती है। इसलिए पुन: पुन: अभ्यास करना चाहिए। विवेकचूड़ामणि में दम के विषय में कहा है-

विषयेभ्य: परावर्त्य स्थापनं स्वस्वगोलके।
उभयेषामिन्द्रियाणां स दम: परिकीर्तित:॥'' (23)

उभयेषाम् इन्द्रियाणां अर्थात् ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों का, विषयेभ्यः अर्थात् स्व-स्वविषय से, परावर्त्य अर्थात् विमुखी करके, स्वस्वगोल के अर्थात् स्व-स्वस्थान में, स्थापनं अर्थात् स्थिर करके निश्चल रूप से रक्षण करना, वह इस परिकीर्तित है ऐसा कथित है।

शमदमवान पुरूष ही स्थितप्रज्ञ है ऐसा भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में भी कहा है-

''यदा संहरते चाय कुर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥'' (2/58)

यदा अयं कुर्मः अङ्गानि इव सर्वशः इन्द्रियाणि इन्द्रियार्थेभ्यः संहरते तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता भवति ऐसा अन्वय है। अर्थात् इन्द्रियाँ सर्वदा शब्दादि विषयों में प्रवृत्त होती हैं कूर्म जैसे भय से अपने अंगों का संकुचन कर लेता है वैसे ही जब यह ज्ञाननिष्ठा में प्रवृत्त जन सभी इन्द्रियों को शब्दादि विषयों से संकुचित कर लेता है तब उसकी प्रज्ञा प्रतिष्ठित होती है। और वह स्थितप्रज्ञ होता है।

पाठगत प्रश्न 24.1

1. साधनचतुष्टय क्या है?
2. अद्वैतवेदान्त के मत में नित्य वस्तुएँ क्या हैं?
3. ब्रह्म के नित्यत्व में श्रुति प्रमाण क्या है?
4. विवेकचूड़ामणि में नित्यानित्यवस्तुविवेक के विषय में क्या कहा है?
5. दम क्या है?
   (अ) मन का निग्रह
   (ब) बहिरिन्द्रियों का निग्रह
   (स) अन्तरिन्द्रियों का निग्रह
6. शम क्या है?
7. शमादि कौन हैं?
8. स्वर्गादि के अनित्यत्व में श्रुतिप्रमाण क्या है?

24.4.3 उपरतिः-

वेदान्तसार में उपरति के दो लक्षण कहे हैं- ''निवर्तितानाम् एतेषां तद्व्यतिरिक्तविषयेभ्यः उपरमणम् उपरतिः'' अथवा विहितानां कर्मणां विधिना परित्यागः'' मन तथ बहिरिन्द्रियों के निग्रह से ही तत्त्वज्ञान का मार्ग उन्मुक्त नहीं होता है। पूर्वतनवासना से ये इन्द्रियाँ

और मन पुनः चञ्चल हो जाते हैं। अतः निवर्तित इन्द्रियों और मन की श्रवणादि साधन से अलग शब्दादि विषयों में प्रवृत्ति होती है। तब जिस वृत्ति विशेष से उनका निग्रह किया जाता है वह उपरति है। अर्थात् श्रवणादिव्यतिरिक्त विषयों से पुनः पुनः उनमें दोषदर्शन से उपरमण निवृत्ति ही उपरति है। वैसे ही सुबोधिनी में कहा है– ''निगृहीतानां एतेषां बाह्येन्द्रियाणां श्रवणादिसाधनव्यतिरिक्तेषु शब्दादिविषयज्ञेयेषु यथ तानीन्द्रियाणि सर्वथा न गच्छन्ति, तथा तेषां निग्रहो येन वृत्तिविशेषेण क्रियते, सोपरतिः इत्यर्थः।'' उपरति के लक्षणानन्तर वेदान्तसारकार सदानन्दयोगीन्द्र ने कहा है– ''विहितानां कर्मणां विधिना परित्यागः।'' शास्त्रविहित नित्यनैमित्तिक प्रायश्चित आदि का विधिपूर्वक सन्न्यास आश्रम स्वीकार करने से परित्याग करना ही उपरति है। अर्थात् मैं कर्त्ता नहीं हूँ इस भावना से सर्वकर्मत्याग ही उपरति है। विवेकचूड़ामणि में कहा है– ''बाह्यानालम्बनं वृत्तेरेषोपरतिरूत्तमा।''

मन का विषय प्रकाश शक्ति के, बाह्यानालम्बन, बाह्यानात्म वस्तु के आकार से अपरिणत होना ही उत्तम उपरति है।

24.4.4 तितिक्षा

''तितिक्ष शीतोष्णादिद्वंद्वसहिष्णुता'' ऐसा कहा गया है। अर्थात् शीतोष्ण से लेकर विपरीत विषयों को तथा उनसे उत्पन्न सुख-दुःखादि को सहन करना। सभी जीव सुख से आनन्द अनुभव करते हैं। आनन्द से प्रमाद नहीं होता है। परन्तु दुःख को सब सहन नहीं कर सकते। अतः दुःख के कारण बहुत से लोग प्रमाद करते हैं। परन्तु जो तितिक्षा का अभ्यास करता है उसके समीप सुख व दुःख दोनों समान हैं। वह सुख से अत्यधिक आनन्दित नहीं होता, दुःख से भी दुःखी नहीं होता। अतः वह अप्रमादी व धैर्यवान होकर साधना से अविचलित होता है। विवेकचूड़ामणि में कहा है–

''सहनं सर्वदुःखानामप्रतीकारपूर्वकम्।
चिन्ताविलापरहितं सा तितिक्षा निगद्यते।।''

सर्वदुःखानां अर्थात् सब प्रकार के दुःखों से, चिन्ताविलापरहित अर्थात् चिन्ता और विलाप को छोड़कर, अप्रतीकारपूर्वकम् अर्थात् प्रतीकार न करके, सहनम् अर्थात् स्वीकार करना, ही तितिक्षा कही गई है ऐसा अर्थ है।

गीता में भी भगवान वासुदेव ने कहा है–

''दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधस्थितधीर्मुनिरूच्यते।। ''

वस्तुतः शमदमोपरति से बाहिर्विषयों से निवृत्ति होती है। तितिक्षा में तो अन्तर्विषयों से चित्त का निवर्तन होता है।

24.4.5 श्रद्धा

केवल श्रवणादि से तत्त्वसाक्षात्कार नहीं होता है। वह भी श्रद्धापूर्वक ही करना चाहिए। श्रद्धा है क्या ऐसा पूछते हैं तो कहते हैं- ''गुरूपदिष्टवेदान्तवाक्येषु विश्वासः श्रद्धा।'' गुरू के वचनों में तथा गुरू के द्वारा उपदिष्ट शास्त्र के वचनों में दृढ़तर निश्चय ही श्रद्धा है। आत्मतत्त्वजिज्ञासा का श्रद्धा ही मेरूदण्ड है। श्रद्धा नहीं रहती तो सौ बार उपदिष्ट भी अर्थ का अवधारण नहीं होगा। अतः आत्मजिज्ञासु को श्रद्धा का अवलम्बन अनिवार्य है। गीता में भगवान् ने गाया है ''श्रद्धावान लभते ज्ञानम्।' भगवान शंकराचार्य ने श्रद्धा के विषय में विवेकचूड़ामणि में कहा है-

''शास्त्रस्य गुरूवाक्यस्य सत्यबुद्धयवधारणम्।
सा श्रद्धा कथिता सद्भिर्यया वस्तूपलभ्यते॥''

गुरूवाक्यस्य अर्थात् गुरू के द्वारा उपदिष्ट वाक्य का तथा शास्त्रवाक्यस्य अर्थात् वेदान्तवाक्य का, सत्यबुद्धावधारणं अर्थात् सत्यता से ग्रहण करना, यथा अर्थात् जिस निश्चय से, वस्तूपलभ्यते अर्थात् आत्मा की उपलब्धि होती है वह श्रद्धा है, सभी के द्वारा कही गई है।

24.4.6 समाधानम्

''निगृहीतस्य मनसः श्रवणादौ तद्गुणविषये च समाधिः समाधानाम्।'' अर्थात् विषयों से प्रत्याहित चित्त का आत्मा के विषय में श्रवण-मनन-निदिध्यासन में तथा उसके अनुगुण विषय में गुरूशुश्रुषादि में अवस्थान ही समाधान है। इस दशा में ऐसा कुछ भी नहीं करना चाहिए जिससे आत्मविषयस्मृतिधारा का विच्छेद हो। आत्मविषयक प्रत्यवाह का उत्पादन ही समाधि है, वही समाधान है। विवेकचूड़ामणि में कहा है-

''सम्यगस्थापनं बुद्धैः शुद्धैः ब्रह्मणि सर्वथा।
तत्समाधानमित्युक्तं न तु चित्तस्य लालनम्॥''

शुद्धे अर्थात् निर्गुण में, ब्रह्मणि अर्थात् ब्रह्मविषयक तत्त्वज्ञान में, बुद्धैः अर्थात् चित्त का, सम्यक् अर्थात् यथार्थ रूप से, आस्थपनम् अर्थात् स्थिरीकरण ही समाधान है यह कहा गया है। तो किन्तु कौतुहल से चित्त का लालन समाधि के बिना आत्मसाक्षात्कार नहीं होता है।

इसी प्रकार शमदिषट्कसम्पत्ति सहकारिसाधनों में अन्यतम हैं। साधनचतुष्टय की सिद्धि में साधक को आत्मज्ञान अनायासता से हो जाता है। इस प्रकार साधनचतुष्टय सम्पन्न अधिकारी वेदान्तवाक्यश्रवण से अद्वैत ब्रह्मात्मज्ञान को प्राप्त करता है।

24.5 मुमुक्षुत्वम्

मुमुक्षुत्व का अर्थ है मोक्ष में इच्छा। आत्मज्ञान प्राप्ति में यही प्रधान साधन है। यदि पुरूष की मोक्ष प्राप्ति की इच्छा न होती तो मोक्षोपाय का अन्वेषण नहीं करता। इसलिए आत्मदर्शन भी नहीं करता। आत्मदर्शन मोक्ष का मार्ग है यह वेदान्त तत्त्व श्रवण-मनन-निदिध्यासन आत्मदर्शन में कारण हैं यह ज्ञान नहीं कर सकता था। अत: वेदान्त में उसकी प्रवृत्ति ही नहीं होती। उससे वेदान्तैकवेद्य का आत्मा का ज्ञान भी उसका नहीं होता है। अत: अधिकारी की मोक्ष की इच्छा अवश्य होनी चाहिए। विवेचूड़ामणि में शंकराचार्यजी ने कहा है-

''अहंकारादिदेहान्तान् बन्धानज्ञानकल्पितान्।
स्वस्वरूपावबोधेन मोक्तुमिच्छा मुमुक्षुता॥''

अहंकारादिदेहान्तान् अर्थात् सूक्ष्म अहंकार से लेकर स्थूलदेह तक, अज्ञानकल्पितान् अर्थात् अनजाने में उत्पन्न हुओं को, बन्धान् अर्थात् बन्धसमूहों को, स्वस्वरूपावबोधेन अर्थात् आत्मज्ञान से, मुक्त होने की इच्छा ही मुमुक्षुता है, यह अर्थ है।

इस प्रकार साधनचतुष्टय निरूपित किये जाते हैं। जब तक नित्यानित्यवस्तुविवेक नहीं होता तब तक अनित्य वस्तुओं में वैराग्य नहीं होता। वैराग्य के बिना शमादि का भी आचरण सम्भव नहीं है। शमादि के अभाव में मोक्षविषयी इच्छा ही नहीं हो सकती। मोक्ष में इच्छा के बिना ब्रह्मजिज्ञासा भी नहीं होती। इसलिए पहले नित्यानित्यवस्तुविवेक उसके बाद इहामुत्रफलभोगविराग, उसके बाद शमादिषट्सम्पत्ति उसके बाद मुमुक्षुत्व इस प्रकार क्रम से इनका उल्लेख है।

इस प्रकार साधनचतुष्टयसम्पन्न प्रमाता ही वेदान्तविद्या में अधिकारी होता है। यहाँ श्रुतिप्रमाण भी प्राप्त होता है -

''शान्तो दान्त उपरतिस्तितिक्षु: समाहितो भूत्वाऽमन्येवआत्मानं पश्यति।''

अर्थात् जिसका मन शान्त है, इन्द्रियाँ चञ्चल नहीं हैं, जो संन्यासदीक्षा को प्राप्त कर चुका है, जो सुख-दु:ख में समान मन वाला है वह समाहित होकर एकाग्रभाव प्राप्त कर स्वयं में स्वयं को देखता है। इस श्रुति का समर्थन उपदेशासाहस्त्री का यह वाक्य करता है -

''प्रशान्तचित्ताय जितेन्द्रियाय च प्रहीणदोषाय यथोक्तकारिणे।
गुणान्विताय अनुगताय सर्वदा प्रदेयमेतत् सततं मुमुक्षवे॥' (324, 16/12)

प्रशान्तचित्ताय अर्थात् जिसका मन शान्त है उसके लिए, जितेन्द्रियाय अर्थात् जिसकी इन्द्रियाँ चञ्चल नहीं हैं, प्रहीणदोषाय अर्थात् त्याज्यकर्मों को त्यागकर नित्यादि कर्मों का अनुष्ठान करता है उसके लिए, गुणान्विताय अर्थात् विवेकवैराग्यादि गुण विशिष्ट के लिए, यथोक्तकारिणे अर्थात् अनुगताय अर्थात् जो गुरू तथा शास्त्रवचन के अनुसार आचरण करता है सर्वदा

आचार्य के अनुगत ही रहता है, उसके लिए, सततं मुमुक्षवे अर्थात् मोक्षप्राप्ति में जिसका अदम्य उत्साह है उसके लिए यह ब्रह्मविद्या प्रदेय है, दातव्य है।

24.6 साधनचतुष्टयम् एव ब्रह्म विषयक अधिकारी

पहले हमने वेदान्तशास्त्र के अनुबन्धचतुष्टय में अधिकारी कौन होता है यह आलोचित किया। जिसका साधनचतुष्टय होता है वही व्यक्ति वेदान्त शास्त्र में अधिकारी होता है। वह वेदान्तशास्त्र के द्वारा बोधित विषय के अवगमन में समर्थ होता है। आत्मस्वरूप ब्रह्म ही है यह वेदान्तशास्त्र से बोधित होता है। यह आत्म तथा ब्रह्म का ऐक्य अथवा जीव और ब्रह्म का ऐक्य वेदान्तशास्त्र का विषय है। इस विषय को वेदान्ताध्ययन से साधनचतुष्टय सम्पन्न व्यक्ति ही समझ सकता है, अन्य नहीं। इसलिए वेदान्तशास्त्र का अधिकारी साधनचतुष्टयसम्पन्न ही होता है यह जाना जाता है।

जो नदी के पर पार जाना चाहता है वह नौका में आरूढ़ होकर चप्पू चलाकर वहाँ जा सकता है। किन्तु यदि हाथ में चप्पू नहीं है तो नौका का आरोहण करके भी वह उस नौका से परपार होने में समर्थ नहीं होता है। जिसके पास चप्पू है वह नौका में आरूढ होकर सुखपूर्वक चप्पू चलाकर नदी के परपार जाता है। इसी प्रकार संसार के पार मोक्ष को जो जाना चाहता है वह वेदान्तवाक्यों का श्रवणादिरूपी उपाय से वहाँ जा सकता है। किन्तु जिसका साधन चतुष्टय नहीं है वह श्रवणदिकों को करके भी आत्मस्वरूप ब्रह्म को जानने में समर्थ नहीं होता है। साधनचतुष्टय सम्पन्न व्यक्ति तो ब्रह्मबोधक वेदान्तवाक्यों को सुनकर, मानकर, निदिध्यासन करके ब्रह्मविद्या को अवश्य प्राप्त करता है और जनममरणरूपी संसार से मुक्त होता है। इसलिए वही व्यक्ति ब्रह्मविद्याधि कारी है। वही ब्रह्मविद्या के अन्तरङ्गसाधन उपनिषद वाक्य- श्रवणादि को करने में योग्य होता है। ऐसा अर्थ है। ''मोक्षे अधिकारी'', ''वेदान्तश्रवणे अधिकारी'', और ''वेदान्ते अधिकारी'' ऐसे निर्देश किया गया है।

साधनचतुष्टय सम्पन्न ब्रह्मविद्याधिकारी के विषय में भगवान भगवत्पाद शंकराचार्य ने विवेकचूड़ामणि में कहा है-

''विवेकिनो विरक्तस्य शमादिगुणशालिनः।
मुमुक्षोरेव हि ब्रह्मजिज्ञासायोग्यता मता॥ (17)

अन्यव- विवेकिनः विरक्तस्य शमादिगुणशालिनः मुमुक्षोः एव हि ब्रह्मजिज्ञासायोग्यता मता।

तात्पर्य- जो विवेकी, विरक्त, शमदमादिगुणसहित, और मुमुक्षु होता है उसी की ब्रह्मजिज्ञासा में योग्यता होती है ऐसा शास्त्र के आचार्यों का मत है। ब्रह्मजिज्ञासा शब्द का यहाँ ब्रह्मविचार ऐसा अर्थ है। श्रवण, मनन और निदिध्यासन इन तीन उपायों से उपनिषदवाक्यों को ब्रह्म कैसा है यह विचार किया जाता है। इसलिए ब्रह्मजिज्ञासा में योग्यता इसका अर्थ है श्रवणादि में योग्यता। विवेकादि साधनों के बिना ब्रह्मविचार फलप्रद नहीं होता

है। ब्रह्मविचार का ब्रह्मविद्या ही फल है। विवेकादि साधनों से सम्पन्न व्यक्ति ही श्रवणादि से वह फल प्राप्त करने में योग्य है। इसलिए साधनचतुष्टय सम्पन्न व्यक्ति की ही ब्रह्मजिज्ञासा में योग्यता मानी जाती है।

24.7 साधनचतुष्टयसम्पन्नः नचिकेता

कठोपनिषद् में साधनचतुष्टयसम्पन्न नचिकेता की कथा

वाजश्रवस का पुत्र बालक नचिकेता था। एक बार वाजश्रवस ने यज्ञ किया। यज्ञ के अन्त में दक्षिणा रूप में वृद्ध दुग्धहीन गाय दान की। वह देखकर नचिकेता शास्त्रविधान को स्मरण करके चिन्तित हुआ-इस प्रकार की दक्षिणा से पिता स्वयं किये यज्ञ का इष्ट फल प्राप्त नहीं करेंगे अपितु अनिष्ट फल प्राप्त होगा। अतः उनके पुत्र अर्थात् मेरे द्वारा यह यज्ञ सफल किया जाना होगा। यह सोचकर नचिकेता पिता के समीप जाकर हे पिता! मुझे किसके लिए दक्षिणा रूप में आप देंगे यह पूछा। बार-बार ऐसे पूछने से कुपित पिता ने कहा तुम्हें मृत्यु को दूँगा। बोलकर वाजश्रवस मुझसे यह क्या कहा गया यह सोचकर दुःखी हो गया। किन्तु नचिकेता पिता के वचन मिथ्या न हो इसलिए सोचकर मृत्युदेव यम के घर चला गया। नचिकेता के जाने पर यम अन्यत्र कहीं गए हुए थे। यमलोक में किसी ने नचिकेता का अतिथि सत्कार नहीं किया। तब भी अक्षुब्ध नचिकेता ने तीन रात यमालय में निवास किया। यम वापस घर आकर सब सुनकर नचिकेता को अर्ध्यपाद्यादि से पूजित कर बोले- हे ब्राह्मण! काल के लिए मैंने तुम्हारी पूजादि नहीं की। क्षमा करें। भोजनादि के बिना तुमने यहाँ तीन रात्रि निवास किया अतः तीन वर माँगो मैं दूँगा। जो इच्छा है कहो। नचिकेता ने प्रथमवर के रूप में पिता का सौख्य माँगा। यम ने वही वर उसे दिया। द्वितीयवर के रूप में नचिकेता ने स्वर्गप्राप्ति में उपायभूत विद्या की कामना की। यम ने वह वर भी नचिकेता को दे दिया। तृतीयवर के रूप में आत्मस्वरूप जानने की इच्छा की। इस वर को प्रदान तो यम ने नहीं दिया। साधनचतुष्टय सम्पन्न अधिकारी के लिए ही आत्मस्वरूप उपदेष्टित है अन्यथा वह उपदेश फलदायी नहीं होगा यह यम जानते थे। अतः नचिकेता साधनचतुष्टयसम्पन्न है या नहीं यह जानने के लिए मृत्युदेव यम निश्चितवान थे। आत्मस्वरूपज्ञान के स्थान पर अन्य कोई भी वर माँग लो यम ने कहा। एक आत्मज्ञान को छोड़कर पप्रञ्च में जो कुछ भी है यथेच्छा माँगो, मैं तुम्हें प्रदान करूँगा, ऐसा यम ने उस बालक नचिकेता से कहा। सेविका, रथ, हाथी, हिरण, वित्त, दीर्घजीवन इत्यादि जो जो चाहते हो वह सब दूँगा जब यम ने ऐसा कहा तो नचिकेता बोला-यह सब वस्तुएँ निश्चित ही अनित्य है। यह जगत् अनित्य है। यहाँ जगत् में जीवन दीर्घ हो तब भी अनित्य ही होगा। मैं अनित्य कुछ भी नहीं चाहता, अपितु मुझे नित्य आत्मज्ञान ही अभीष्ट है। इसलिए मुझे वही दो। यह सुनकर यम को ज्ञान हो गया कि नचिकेता को नित्यानित्यवस्तुविवेक है। रथ, हस्ती, हिरण दीर्घजीवदादि ऐहिक भोग तथा अप्सरा से लेकर आमुष्कि भोग तुम्हें दूँगा जब यम ने ऐसा प्रलोभन दिया तब नचिकेता दृढ़ता से बोले- इन भोगों में

मेरी रति ही नहीं है। इनको मैं वरण नहीं करूँगा मेरा वरणीय वर आत्मज्ञान ही है। इससे नचिकेता में इहामुत्रफलभोगविराग है यह यम को ज्ञात हो गया।

नचिकेता की शमादिसम्पत्ति भी यम ने यहीं से जान ली। मन और इन्द्रियों का निग्रह ही शम-दम है। ये दोनों नचिकेता में निरन्तर विद्यमान हैं इसीलिए वह यम के द्वारा प्रदर्शित विषयोपभोगों से प्रलोभित नहीं हुआ। तितिक्षा भी नचिकेता में है। शीतोष्ण, सुख-दु:ख, मानापमानादि जो द्वंद्व हैं उसके विषय में सहिष्णुता ही तितिक्षा है ऐसा कहा जाता है। जब नचिकेता यम के घर आया तब सबके द्वारा उपेक्षित भी वह तीन रात्रि वहाँ रहा। किसी के द्वारा उसे भोजन भी नहीं दिया गया, सम्मान की बात तो दूर है। फिर जब यम अर्ध्यपाद्यादि से उसका पूजन करते हैं तब बिना क्षोभ को अप्रतीकारपूर्वक वह नचिकेता उसे स्वीकार करता है। नचिकेता तितिक्षावान है यह जानने के लिए यम को और अधिक क्या प्रमाण चाहिए। श्रद्धा भी उस बालक की स्फुट है। शास्त्र और गुरूवाक्य में विश्वास अथवा आस्तिक बुद्धि ही श्रद्धा है। यज्ञ में निष्फल गायों को दान करते हुए पिता को देखकर नचिकेता शास्त्रोपदेश को याद करता है। और शास्त्र में बोधित पुत्रधर्म को याद करके स्वसमर्पण करके भी पिता के यज्ञ को सफल करने का यत्न करते हैं। और भी आत्मस्वरूप के उपदेश के लिए यम के समान समर्थ अन्य आचार्य सुख से नहीं मिला यह भी नचिकेता ने कहा। यहाँ से उसकी गुरूवचन में श्रद्धा है यह यम को ज्ञात हुआ। और शमादि में से कुछ गुण नचिकेता में स्पष्ट दिखाई देते हैं अत: अन्य भी गुण उसमें होंगे यह जाना जा सकता है।

मुमुक्षुत्व अथवा मोक्ष में इच्छा भी नचिकेता में विद्यमान है। क्योंकि निरावधि प्रलोभनों के समक्ष भी वह मोक्ष के उपायभूत केवल आत्मज्ञान की ही पुन: पुन: प्रार्थना करता है। इस प्रकार नचिकेता साधनचतुष्टय- सम्पन्न है यह यम ने परीक्षण के द्वारा निश्चित किया। उससे वह मोक्ष के अन्तरङ्ग साधनों में श्रवण-मनन-निदिध्यासन में अधिकारी है ऐसा जानकर यम उसके लिए आत्मस्वरूप का उपदेश करते हैं। आचार्य यम के मुख से आत्मस्वरूप ब्रह्म को सुनकर नचिकेता ब्रह्मज्ञानी हुआ।

पाठगत प्रश्न 24.2

1. उपरति क्या है?
2. तितिक्षा क्या है?
3. श्रद्धा क्या है?
4. समाधान क्या है?
5. मुमुक्षुत्व क्या है?
6. साधनचतुष्टसम्पन्न ही वेदान्त विद्या में अधिकारी होता है, यहाँ श्रुति प्रमाण क्या है?

7. नचिकेता किसका पुत्र था?

(अ) अग्नि का (ब) वाजश्रवस का

(स) यम का (द) याज्ञवल्क्य का

24.8 श्रवण-मनन-निदिध्यासनानि

''आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्य निदिध्यासितव्यः'' (बृह.उ. 2. 2.4) इस मन्त्र से उपनिषद् में आत्मा का श्रवण, मनन और निदिध्यासन उपदिष्ट है। आत्मसाक्षात्कार मे श्रवण-मनन- निदिध्यासन साक्षात्करण हैं इसी कारण इस प्रसंग में श्रवणमननिदिध्यासन का वर्णन कर रहे हैं। जब तक स्वस्वरूपचैतन्यसाक्षात्कार नहीं होता तब तक श्रवणमननिदिध्यासन का अनुष्ठान करना चाहिए। इसलिए वेदान्तसार में कहा गया है-

'स्वस्वरूपचैतन्यसाक्षात्कारपर्यन्तं श्रवण-मनन-निदिध्यासन-समाध्य- नुष्ठानस्य अपेक्षितत्वात्।''

''आवृत्तिइसकृदुपदेशात्' (4.1.1) यह ब्रह्मसूत्र में भी सूत्रकार बादरायण ने पुनः पुनः श्रवणदि का अनुष्ठान करने के लिए कहा है। भाष्यकार शंकरभगवत्पाद ने भी लिखा है-

''दर्शनपर्यवसानानि हि श्रवणादीनि आवर्त्यमानानि दृष्टार्थानि भवन्ति, यथ अवद्यातादीनि तण्डुलादि- निष्पत्तिपर्यवसानानि, तद्वत।'' इसका अर्थ है जैसे कि पुनः पुनः अवद्यात से धान से तण्डुल निकलते हैं जब तक तण्डुल नहीं निकलते तब तक अवद्यात करना चाहिए वैसे ही जब तक तत्त्वसाक्षात्कार नहीं होता तब तक श्रवणादि का पुनः पुनः अभ्यास करना चाहिए।

24.8.1 श्रवणम्

धर्मराजध्वरीन्द्र विरचित अद्वैतवेदान्त के प्रकरण ग्रन्थ वेदान्त परिभाषा में भी ब्रह्मसाक्षात्कार हेतु श्रवण, मनन और निदिध्यासन आदि का वर्णन किया है। वहाँ श्रवण के विषय में कहते हैं-

''श्रवणं नाम वेदान्तानाम् अद्वितीये ब्रह्माणि तात्पर्यावधरणानकला मानासी क्रिया।'' श्रवण केवल कर्णों से वेदान्त वाक्यों को सुनकर उन सब वेदान्तवाक्यों का तात्पर्य अद्वैत ब्रह्म में ही हो ऐसा निश्चय है। वेदान्तसार में भी श्रवण के विषय में कहा है-

''श्रवणं नाम षड्विधिलिन्नैः अशेषवेदान्तानाम् अद्वितीयवस्तुनि तात्पर्यावधारणम्।'

तात्पर्य शब्दार्थ- तात्पर्यनिर्णायकलिङ्ग क्या है? लीनं गमयतीति लिङ्ग, तात्पर्यनिर्णय के लिए लिङ्ग तात्पर्यनिर्णायक लिङ्ग कहलाता है। तात्पर्य क्या है? वह जिसके पर है

टिप्पणी

वह तत्पर यह बहुब्रीहि, अर्थपर यह अर्थ है। उसका भाव तात्पर्य है भाव ष्यञ्प्रत्यय। शब्द अथवा वाक्य जो अर्थपर है वह प्रतीतिजननयोग्यत्व ही तात्पर्य है ऐसा व्युत्पत्ति लब्ध अर्थ है। अद्वैत मत में अद्वितीय ब्रह्म में ही अशेषवेदान्तों का तात्पर्य है। आकाङ्क्षा की तरह तात्पर्य भी शाब्दबोध में सहकारि कारण है। नैयायिक मत में बोलने की इच्छाविशेष ही तात्पर्य शब्दार्थ है। लोक में अभिप्रेत अर्थ के बोधन के लिए शब्द या वाक्य प्रयोग किए जाते हैं। इसलिए शब्द या वाक्य से ही इस प्रकार के अर्थ की प्रतीति हो यह बोलने की जो इच्छा है वही तात्पर्यशब्दार्थ है- ''वस्तुरिच्छा तु तात्पर्य परिकीर्तितम्'' (अन्नभट्टस्य दीपिकाटीका)

इसलिए वैयाकरणों ने ईश्वरेच्छा को ही तात्पर्य कहा है। उनके मत में यह वाक्य या यह पद अर्थ के बोध के लिए उच्चारणीय है यह ईश्वरेच्छा तात्पर्य है यह तात्पर्यस्वरूप है। अतः सर्वज्ञेश्वरप्रणीत होने से अत्र अतिव्याप्ति की शंका नहीं है। जहाँ एक ही शब्द के अनेक अर्थ हों, वहाँ बोलने की इच्छा ही तात्पर्य है यह उनके द्वारा भी अंगीकृत है। वेदान्तमत में तो - ''तत्प्रतीतिजननयोग्यत्वम् एव तात्पर्यम्।'' ईष्ट अर्थ की प्रतीतिजननसामर्थ्य ही तात्पर्य है यह इसका अर्थ है। शब्द के वैसे सामर्थ्यवश होने से ही भोजन प्रकरण में ''सैन्धवम् आनय'' यह सैन्धव शब्द लवण को बोधित करता है। सैन्धवशब्द के अश्वबोधन सामर्थ्य होने पर भी वह लवण ही अर्थ कैसे बोधित हो तो भोजन प्रकरण में अश्वार्थ प्रतीति न हो ऐसी इच्छा से अश्वार्थ प्रतीतियोग्यता होने पर भी अश्व की प्रतीति नहीं होगी। इस प्रकार की इच्छा तात्पर्य के द्वारा अभिहित है ऐसा नहीं है, उससे इतर प्रतीति से उत्पन्न इच्छा द्वारा अनुच्चरित होने पर वह प्रतीतिजननयोग्यत्व का तात्पर्य के द्वारा विवक्षा होने से। लौकिक वाक्यों में तो तात्पर्य प्रकरण से समझा जाता है। वाक्यदीप में कहा है-

''वाक्यात् प्रकरणादर्थादौचित्याद्देशकालतः।
शब्दार्थः प्रविभज्यन्ते न रूपादेव केवलम्॥''

अर्थात्- वाक्यात् प्रकरणात् अर्थात् औचित्य, देश और काल से शब्दों के अर्थ भिन्न होते हैं। इसलिए इन सब विषयों को विचारकर ही किसी भी शब्द का तात्पर्य समझना चाहिए।

वैदिक वाक्यों को तो कुछ के मत में अधिकरणमुख से, कुछ के मत में उपक्रम से तात्पर्य निर्णय किया जाता है। अधिकरण विषय-संशय-पूर्वपक्ष-उत्तरपक्ष-संगत्यात्मक पञ्चलिङ्गक है। कहा गया है-

''विषयो विशयश्चैव पूर्वपक्षस्तथोत्तरम्।
सन्नतिश्चेति पञ्चाङ्ग शास्त्रेऽधिकरणं स्मृतम्॥'

तात्पर्यनिर्णयकानि षट् लिङ्गानि- उपक्रमादि से तात्पर्यनिर्णय किया जाता है इसलिए उपक्रमादि का सामान्य परिचय देते हैं। उपक्रमादितात्पर्य- निर्णायकलिङ्गप्रतिपादक श्लोक है-

''उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वता फलम्।
अर्थवादोपपत्ती च लिन्न तात्पर्यनिर्णये॥

उपक्रमोपसंहारौ, अभ्यासः, अपूर्वता, फलम्, अर्थवादः, उपपत्तिः चेति छः तात्पर्यग्राहक लिंग है। अब इन उपक्रमादि लिंगों के स्वरूपवर्णन उदाहरण सहित सामान्यतः दिए जाते हैं-

(क) **उपक्रमोपसंहारौ**- प्रकरणप्रतिपाद्यार्थ के प्रकरण के आदि और अन्त में उपपादन ही उपक्रमोपसंहरौ है। जैसे-छान्दोग्योपनिषद् में छठे अध्याय में प्रारम्भ में 'एकमेवाद्वितीयम्', अन्त में ऐतदात्म्यमिदं सर्वम्' यह अद्वितीय वस्तु का प्रतिपादन करते हैं।

(ख) **अभ्यास**- प्रकरणप्रतिपाद्य की वस्तु का उसके मध्य में पुनः पुनः प्रतिपादन अभ्यास है। यथा छान्दोग्योपनिषद् में अद्वितीय वस्तु के मध्य में 'तत्त्वमसि' ऐसा कहकर नवीन प्रतिपादन विद्यमान है।

(ग) **अपूर्वता**- प्रकरणप्रतिपाद्य के अर्थ का प्रमाणान्तर से अविषयीकरण अपूर्वता है। जैसे- छान्दोग्योपनिषद् में अद्वितीयवस्तु का प्रत्यक्षादि प्रमाणान्तर से अविषयीकरण।

(घ) **फलम्**- प्रकरणप्रतिपाद्य का आत्मज्ञान या उसके अनुष्ठान का वहाँ वहाँ सुनाई देने का प्रयोजन ही फल है। जैसे-''आचार्यवान् पुरूषों वेद, तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्ये अथ सम्पत्स्ये'' (6,14,2) ऐसा छान्दोग्योपनिषद् में अद्वितीयवस्तुज्ञान की वह प्राप्ति ही प्रयोजन है।

(ङ) **अर्थवाद**- प्रकरणप्रतिपाद्य की वहाँ वहाँ प्रशंसा अर्थवाद है। जैसे छान्दोग्योपनिषद् में 'उत तमादेशमप्राक्ष्य येनाश्रुतु श्रुतं भवत्यमत। मतम्बविज्ञातं'' (6,1,3) अद्वितीय वस्तु की प्रशंसा करते है।

(च) **उपपत्ति**- उपपत्ति युक्ति है। प्रकरणप्रतिपाद्वार्थ साधन में वहाँ वहाँ सुनाई देने वाली युक्ति उपपत्ति है। जैसे- ''यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्व मृण्मयं विज्ञातं स्याद् वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृतिकेत्येव सत्यम्'' इत्यादि अद्वितीय वस्तु साधन में विकार के वाचारम्मणमात्रल में युक्ति सुनी जाती है। इस प्रकार छान्दोग्योपनिषद् के छठे अध्याय का तात्पर्य अद्वितीय ब्रह्म है यह स्पष्ट है। इसी प्रकार अन्य उपनिषद् प्रकरण भी द्रष्टव्य हैं। इस प्रकार वेदान्तों का अद्वितीय ब्रह्म में ही तात्पर्य अवधारण ही श्रवण है यह विस्तार से बता दिया है।

24.8.2 मननम्

वेदान्तपरिभाषाकार ने मनन का लक्षण किया है- ''मननं नाम शब्दावधारिते अर्थे मानान्तरविरोध शंयायाम् तन्निराकरणानुकूलर्कात्मज्ञानजनको मनसो व्यापारः।''

इसका अर्थ है कि श्रवण से जो अर्थ निश्चित होता है वहाँ प्रमाणान्तर से बहुत से विरोध आ जाते हैं। द्वैतवादी वहाँ आक्षेप कर सकते हैं अथवा स्वयं के मन में ही विरूद्ध युक्तियाँ पैदा हो सकती हैं। इस प्रकार जिस मनोवृत्तिविशेष से वेदान्तानुगुणयुक्तियों से युक्त जिस मनोवृत्तिविशेष से विरूद्ध मतों का खण्डन करके स्वमत में दृढ़ता सम्पादित करते हैं वही मनन है, ऐसा कहा जाता है। अध्यात्मोपनिषद् में भी मानते हैं-

''युक्त्या सम्भवितत्त्वानुसन्धानं मननं तु तत्।''

मनन ही तर्कात्मक है, परन्तु इससे वेदसिद्धान्त अविरोधी तर्क ही जानना चाहिए न कि वेदसिद्धान्त विरोधी तर्क। इसीलिए भगवान भाष्यकार ने कहा- ''श्रुत्यनुगृहीतः एव ह्यत्र तर्कोनुभवान्नत्वेन आश्रियते।'' मनु ने भी कहा है-

''आर्षं धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राविरोधिना।
यस्तर्केणानुसन्धते स धर्मं वेद नेतरः॥ (10.106)

अर्थात् जो ऋषियों के धर्मोपदेश को वेदस्मृत्यादि शास्त्रविरोधी तर्कों से अनुसंधान करता है वह धर्म का यथार्थ स्वरूप जानता है, अन्य नहीं।

वेदान्तसार में मनन के विषय में कहा है- ''मननं तु श्रुतस्य अद्वितीयवस्तुनः वेदान्तानुगुणयुक्तिभिः अनवरतम् अनुचिन्तनम्।'' अतः वेदान्तवाक्यों को सुनकर अद्वैत ब्रह्म ही वेदान्तों का तात्पर्य है यह जानकर विरूद्ध युक्तियों का वेदसिद्धान्ताविरोधियुक्तियों से निराकरण करना ही मनन है यह अर्थ फलित होता है।

24.8.3 निदिध्यासनम्

श्रवण और मनन के बाद वेदान्तपरिभाषा में निदिध्यासन का लक्षण करते हैं-

''निदिध्यासनं नाम अनादिदुर्वासनया विषयेष्वाकृष्यमाण चित्तस्य विषयेभ्यऽकृष्यात्मविषयक स्थैर्यानुकूलो मानसो व्यापारः।''

अशेष वेदान्तों का तात्पर्य अद्वितीय ब्रह्म में है यह निश्चित रूप से ज्ञान होते हुए भी अनादिकाल से जो दुर्वासनाएँ हमारे मन में स्थित हैं वे चित्त को विषयों में आकर्षित करते हैं। इस प्रकार विषयों में आकृष्ट होते हुए चित्त को जिस मनोवृत्ति विशेष से विषयों से खींचकर आत्मविषयी स्थिरता में सम्पादित किया जाता है वह निदिध्यासन कहलाता है। वेदान्तपरिभाषकार के मत में निदिध्यासन ही ब्रह्मसाक्षात्कार में साक्षत्कारण है। इसलिए उन्होंने कहा- ''निदिध्यासनं ब्रह्मसाक्षात्कारे साक्षात्कारणम्।'' वेदान्तसार में निदिध्यासन के विषय में कहा है- ''विजातीदेहादिप्रत्ययरहित-अद्वितीयवस्तु- सजातीयप्रत्ययवाहः निदिध्यासनम्।'' जब मन स्थिर होता है, अर्थात् मन में देहादि प्रत्ययों का आविर्भाव नहीं होता, तब स्थिर शान्त एकाग्र मन में अविच्छिन्नतैल धारा की तरह अद्वितीय ब्रह्मज्ञान निरन्तर प्रवाहित होता है, वही निदिध्यासन कहलाता है। कहा भी है-

''ताभ्यां निर्विचिकित्सेऽर्थे चेतसः स्थापितस्य यत्।
एकतानत्वम् एतद्धि निदिध्यासनमुच्यते॥''

अर्थात् श्रवण-मनन से जब अर्थ निःसन्दिग्ध होता है तब उस निःसन्दिग्ध वस्तु में मन की एकान्तता ही निदिध्यासन कहा जाता है। इस प्रकार श्रवण-मनन-निदिध्यासन ब्रह्मसाक्षात्कार में सहकारिकारण अथवा साक्षात्कारण हैं। कहा है-

''श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्यो मन्तव्यश्चोपपत्तिभिः।
मत्वा च सततं ध्येयम् एते दर्शनहेतवः॥''

पाठगत प्रश्न 24.3

1. ''आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः'' यह किस उपनिषद् में विद्यमान है?

   (अ) कठोपनिषद् में (ब) केनोपनिषद् में

   (स) छान्दोग्योपनिषद् में (द) बृहदारण्यकोपनिषद् में

2. श्रवण क्या है?
3. मनन क्या है?
4. निदिध्यासन क्या है?
5. वेदान्त सिद्धान्त में तात्पर्य क्या है?

पाठसार

अद्वैतब्रह्मप्राप्ति के लिए सहकारि साधन हमनें इस पाठ में पढ़े। वही साधन साधनचतुष्टय इस नाम से प्रसिद्ध हैं। वे ही नित्यानित्यवस्तुविवेक, इहामुत्रफलभोगविराग, शमादिषट्कसम्पत्ति और मुमुक्षुत्व हैं। इनमें से नित्यानित्यवस्तुविवेक है कि ब्रह्म ही नित्य वस्तु है उससे अन्य सब वस्तुएँ अनित्य है। जैसे इस जगत् में विद्यमान भोग्य वस्तुएँ अनित्य हैं वैसे ही स्वर्गादिलोकान्तरों में भी विद्यमान वस्तुएँ अनित्य हैं ऐसा जानकर अनित्य विषयों के भोग से विरति ही इहामुत्रफलभोगविराग है। शम, दम, उपरति, तितिक्षा, समाधान और श्रद्धा ये छः साधनों की प्राप्ति ही शमदमादिषट्कसम्पत्ति है। मुमुक्षुत्व ही मोक्ष में इच्छा है। यह साधनचतुष्टय जिसके पास होते हैं वही अद्वैतवेदान्त का अधिकारी होता है। नचिकेता साधनचतुष्टयसम्पन्न था, तभी उसने यम से ब्रह्मविद्या प्राप्त की। साधनचतुष्टय होने पर वेदान्तवाक्यों के श्रवण, मनन और निदिध्यासन से आत्मसाक्षात्कार होता है। श्रवण ''वेदान्तानाम् अद्वितीये ब्रह्माणि तात्पर्यावधरणनुकूला मानीस क्रिया'' है। मनन ''शब्दावधारिते अर्थे

टिप्पणी

मानान्तरविरोधशङ्कायाम् तन्निराकरणानुकूलतर्कात्यज्ञानजनको मानसो व्यापार:।'' निदिध्यासन ''अनादिदुर्वासनयाविषयेष्वाकृष्यमाणचित्तस्य विषयेष्वाकृष्यमाणचित्तस्य विषयेभ्योऽ-कृष्यात्मविषयकरस्थैर्यानुकूलो मानसो व्यापार:।'' इस प्रकार आत्मतत्त्व साक्षात्कार के सहकारि और साक्षात् कारण हमने इस पाठ में आलोचित किए।

पाठान्त प्रश्न

1. नित्यानित्यवस्तुविवेक का वर्णन कीजिए।
2. साधनचतुष्टय को द्वितीय साधन का विशदता से वर्णन कीजिए।
3. शम-दम के विषय में लघु टिप्पणी लिखिए।
4. उपरति क्या है?
5. तात्पर्य के विषय में लघु टिप्पणी लिखिए।
6. तात्पर्यग्राहक लिंगों का परिचय दीजिए।
7. नचिकेता का ब्रह्मविद्या में अधिकार कैसे था इसका वर्णन कीजिए।
8. श्रवण के विषय में लघु टिप्पणी लिखिए।
9. मनन के विषय में लघु टिप्पणी लिखिए।
10. निदिध्यासन के विषय में लघु टिप्पणी लिखिए।
11. शमादिषट्कसम्पत्ति में से श्रद्धा व समाधान का वर्णन कीजिए।
12. तितिक्षा क्या है?

पाठगतप्रश्नानाम् उत्तराणि

उत्तर-24.1

1. 1) नित्यानित्यवस्तुविवेक, 2) इहामुत्रफलभोगविराग,
   3) शमादिषट्कसम्पत्ति, 4) मुमुक्षुत्व ये चार साधन हैं।
2. अद्वैतवेदान्त के मत में ब्रह्म ही एक नित्य वस्तु है।
3. ''नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मम्।''
4. ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या यही रूप विनिश्चित है। वह यह नित्यानित्यवस्तुविवेक समुदाय है।

टिप्पणी

5. बद्ध बहिरिन्द्रियों का निग्रह।

6. शम श्रवणादिव्यतिरिक्त विषयों से मन का निग्रह है।

7. शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान।

8. वह जैसे यह कर्मजित लोक क्षीण हो जाता है वैसे ही अमुत्र पुण्यार्जित लोक भी क्षीण हो जाता है। यह छान्दोग्यश्रुति है।

उत्तर-24.2

1. निवर्तित मन और इन्द्रियों की श्रवणादि साधनव्यतिरिक्तविषयों में शब्दादि में प्रवृत्ति होती है तो जिस वृत्ति विशेष से उसका निग्रह किया जाता है वह उपरति है। अथवा उपरति विहित कर्मों का विधि से त्याग करना है।

2. तितिक्षा शीतोष्णादि द्वंद्वों को सहना है।

3. गुरूपदिष्ट वाक्यों में विश्वास श्रद्धा कहलाता है।

4. निगृहीत मन का श्रवणादि में उसके अनुगुण विषय में समाधि ही समाधान है।

5. मोक्ष में इच्छा।

6. ''शान्तो दान्त उपतिस्तितिक्षुः समाहितो भूत्वाऽत्मन्येव आत्मानं पश्यति।''

उत्तर-24.3

1. वाजश्रवस का।

   (द) बृहदारण्यकोपनिषद् में।

2. ''श्रवणं नाम वेदान्तानाम् अद्वितीये ब्रह्मणि तात्पर्यावधारणानुकूला मानसी क्रिया।''

3. ''मननं नाम शब्दावधारिते अर्थे मानान्तरविरोधशङ्कायाम् तन्निराकरणानुकूलतर्कात्मज्ञानजनको मानसो व्यापारः।''

4. ''निदिध्यासनं नाम अनादिदुर्वासनया विषयेष्वाकृष्यमाणचित्तस्य विषयेभ्योऽपकृष्यात्मविषयक स्थैर्यानुकूलो मानसो व्यापारः।''

5. तदितरप्रतीतिजनन की इच्छा से अनुच्चरित होने पर उस प्रतीतिजननयोग्यत्व का तात्पर्यम् कहते हैं।

।।चौबीसवाँ पाठ समाप्त।।